



ISSN Print: 2394-7500  
 ISSN Online: 2394-5869  
 Impact Factor: 5.2  
 IJAR 2016; 2(2): 294-296  
 www.allresearchjournal.com  
 Received: 13-12-2015  
 Accepted: 16-01-2016

## अजय कुमार सिंह

एम.ए. (हिन्दी), एम. ए. (जर्नलिज्म)  
 एम. एड., एम.एस.सी., एम. फिल.,  
 नेट, बुराड़ी, दिल्ली-110084

## मीरा की स्त्री चेतना

### अजय कुमार सिंह

#### सारांश

मीरा भक्तिकाल की सशक्त साधिका, कवयित्री तथा भक्त रही हैं। मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। फिर मीरा तो राजकुल की वधू थी और उसपर भी विधवा। मीरा के लिए भक्ति में लीन होना कोई आसान राह नहीं था। सभी प्रकार की बाधाओं को पार करते हुए मीरा एक महान भक्त की श्रेणी में पहुँच गईं। मीरा की कविता नारी अंतर्मन की उस धुन और तड़प का प्रतिनिधित्व करती है जो हमारी परंपरा और वेद तथा धर्मशास्त्र-विहित हमारे विधि-विधानों के चलते, सदियों से नारी के अंतर्मन में उमड़ती-घुमड़ती रही है और जिसे ढोना नारी की नियति बन गई है, या मान लिया गया है। मीरा के यहाँ भी सूर की गोपियों की भाँति यह तड़प और घुटन समाज तथा लोक के उन आदर्शों, रीति-रिवाजों, मान्यताओं और मर्यादाओं की पोल खोलते हुए भक्त के आवरण में ही मूर्त हुई है। जिसके तहत नारी सदियों से गीली लकड़ी की तरह धुंधवाते हुए जलती रही है और लोक तथा समाज जिसके इस धुंधवाने और जलने को ही नारीत्व की सार्थकता मानता रहा है। इस प्रकार देखा जाय तो मीरा ने एक तरह से संपूर्ण नारी जाति के अब तक के अनभिव्यक्त और अनकहे को कहा है, प्रत्यक्ष भी और परोक्षतः भी। भक्त होने के नाते और भक्ति के आवरण में अभिव्यक्त होने के नाते मीरा के पद स्वभावतः भक्ति रस में सराबोर हैं, अपने गिरिधर नागर, सांवलिया, प्रभु, जोगी आदि को निवेदित है, किन्तु उनके भीतर से मीरा के आत्म निवेदन को, उनके मन की कचोट को, उनके मन-मस्तिष्क में पल और पक रही समाज तथा सत्ता के महाप्रभुओं के प्रति उनकी गहरी वितृष्णा को राजवधू होने के बावजूद, नारी होने के नाते अपनी तथा नारी-मात्र की हीन तथा असहाय स्थिति को पढ़ना मुश्किल नहीं है। बहरहाल, मीरा साहस करके सामने आईं, उन्होंने एक बार घर या महल की चारदीवारी जो लाँधी तो फिर दुबारा वहाँ वापस लौटकर नहीं गईं – **‘संतन कहा सीकरी सो काम’** कुंभनास की यह उक्ति मीरा के आचरण में भी चरितार्थ हुई।

**विशिष्ट शब्दः**— प्रतिनिधित्व, अनभिव्यक्त, स्वत्व, संप्रदाय, यातनाग्रस्त, शताब्दियाँ, आत्मनिवेदन, जद्दोजहद, पितृसत्तात्मक, भूमण्डलीकरण, उत्पीड़न, विशेषाधिकार।

#### भूमिका

मध्ययुगीन समाज में स्त्री की भूमिकाएँ आज की स्त्री से भिन्न थीं। उसके लिए उड़ान भरने के लिए अनंत आकाश नहीं था। तत्कालीन समाज में किसी स्त्री को भक्ति भी सहज, सुलभ न थी, क्योंकि स्त्री को भक्त रूप में स्वीकार करने के लिए व्यापक समाज की कौन कहे, साधु समाज भी तैयार न था। मीरा के बारे में प्रचलित विभिन्न प्रवादों से यहीं संकेत मिलता है। “चौरासी वैष्णवन की वार्ता” में बल्लभ संप्रदाय के भक्तों का गुणगान किया गया है, लेकिन उसमें मीराबाई को बहुत बुरा-भला कहा गया है और गालियाँ भी दी गई हैं। मीरा की राह कंटकों से भरी हुई सबसे कठोर उगार थी, जहाँ मीरा ही नहीं बल्कि उस युग के सभी स्त्रियों के लिए उस राह पर चलना कठिन था। मध्यकालीन समाज का पूरा ढाँचा पितृसत्तात्मक है, जिसे मीरा इस बंधन को तोड़ देना चाहती हैं। वे कहती हैं –

**“माई सांवरे रंग राची।**

**साज सिंगार बाँध पग धूंधरू लोकलाज तज नाची।”**

उस युग में एक स्त्री के लिए ऐसा संघर्ष अत्यंत कठिन था। लेकिन मीरा ने अपने स्वत्व की रक्षा के लिए कठिन संघर्ष किया। वह राठौर राजकुल की कन्या और सिसोदिया राजकुल की बधू थी, जहाँ सती प्रथा का चलन आम था। मीरा विधवा होने के बाद भी तत्कालीन रूढ़ियों के अनुकूल सती नहीं हुईं। वह लगातार लाँछन, अपमान और यातना सहती हुईं कृष्ण भक्त बनी रहीं। उन्होंने निर्भय होकर भ्रामक युगधर्म और लोकभय का सामना करते स्पष्ट कहा –

**‘भजन करस्यां सती न होस्यां मन मोह्यो धण नामी।**

#### Correspondence

#### अजय कुमार सिंह

एम.ए. (हिन्दी), एम. ए. (जर्नलिज्म)  
 एम. एड., एम.एस.सी., एम. फिल.,  
 नेट, बुराड़ी, दिल्ली-110084

स्त्री के बारे में मीरा का दृष्टिकोण बाकी भक्त कवियों से सर्वथा भिन्न है। उनकी कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और यातना का बोध है तो दूसरी ओर उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वतंत्रता के दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है। अतः मीरा का जीवन और काव्य उस काल के अन्य भक्त कवियों की स्त्री संबंधी मान्यताओं का प्रतिकार है और प्रत्युत्तर भी।

### अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन में भक्तिकालीन संत परंपरा में मीरा के संघर्ष और उसके द्वारा स्त्री मुक्ति व स्त्री चेतना के संदर्भ में उनके क्रांतिकारी कदम का विहंगवलोकन करना तथा आधुनिक समाज में स्त्री संघर्ष से उसकी तुलना करना। एक उच्च कुल में जन्मी व उच्च कुल की वधू के संघर्ष का अवलोकन करना ही अध्ययन का उद्देश्य है।

### शोध पद्धति

मीरा बाई से संबंधित विभिन्न पुस्तकों, लेखों, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकालयों से संपर्क के अलावे विभिन्न कृष्ण-भक्त संतों से मिलकर मीराबाई से संबंधित विषयों की जानकारी प्राप्त कर संकलित करना।

### मुख्य विषय

मीरा बाई के विशेष संदर्भ में स्त्री-चेतना व मुक्ति के लिए मीरा बाई के संघर्ष व उनके जीवन के भीतर विभिन्न कठिनाइयों से जुझते हुए कृष्ण भक्ति के मार्ग पर चलने की उनकी कठिन यात्रा का अवलोकन करना अधिक उचित होगा। मीरा का व्यक्तित्व अपने समय का सबसे क्रांतिकारी स्त्री व्यक्तित्व था। वह संपूर्ण स्त्री चेतना, स्त्री मुक्ति की बात करती है। राणा द्वारा विष का प्याला भेजे जाने पर वह यही कहती रही कि

**‘राणा जी मोहे बदनामी लागे मिठी।  
कोई निंदों, कोई विंदों, मैं चलूंगी चाल अनूठी।’**

तत्कालीन समाज के ‘प्रभुओं’ तथा ‘महाप्रभुओं’ ने मीराबाई को भ्रष्ट करार दिया, और मीरा जो उनकी दृष्टि में ‘बिगड़ी’ तो फिर उन्होंने लोक के लिए अपने को ‘बनाना’ स्वीकार नहीं किया। जिस लोक लाज और कुल की कानि को छोड़ने के लिए उन्हें धिक्कारा गया, उन्होंने उस प्रताड़ना तथा लांछना को सिरमाथे, प्रभु के प्रसाद की तरह स्वीकार किया। जिस गिरिधर के हाथों बिकना उन्होंने सरेआम घोषित किया था, जो उनके रोग के लिए सबसे सही और सबसे अच्छा वैध था, जिसने उन्हें बचपन से ही लुभाया और भरमाया था, उसके लिए दरद को छाती में छिपाए और सहेजे, वे वन-वन, पर्वत-पर्वत एक प्रदेश की धरती से दूसरे प्रदेश की धरती तक विचरती-डोलती रहीं, राजस्थान से चलकर वृन्दावन, और न जाने कहाँ-कहाँ से होती हुई द्वारका पहुँची, और अंततः अपने उसी गिरिधर, सावलिया और जोगी के साथ एक प्राण होते हुए गत हो गई। मीरा ने लंबा आयुष्य नहीं पाया, किन्तु जितने समय तक वे जीवित रहीं, एक शीतल ज्वाला की तरह जलती-धधकती रहीं। सदियों के सामंती परिवेश और सामंती मानसिकता के तहत नारी जिसे अपने हृदय में संजोए गीली लकड़ी की तरह सुलगती, धुंधवाती रही है, मीरा ने उसे व्यक्त किया, उसे वाणी दी और उसके माध्यम से पुरुष-वर्चस्व वाले समाज में नारी के प्रति बरती जाने वाली उस अमानवीयता को उजागर किया, नारी-जीवन के साथ एक सनातन नियति के रूप में, जो नाना धर्मशास्त्रों के आधार पर गढ़ दी गई है। प्रेम और भक्ति के गहरे और गंभीर उद्गारों के बीच मीरा की रचनाओं में नारी की इस अंतर्व्यथा को सुनना कठिन नहीं है। किन्तु मीरा नारी मन की व्यथा के साथ-साथ नारी-मन की मुक्तिगामी आकांक्षा को, उसमें पल रहे विरोध और विद्रोह-भाव को भी मूर्त

करती हैं और इसके साक्ष्य के रूप में खुद हमारे सामने आती हैं। प्राचीन समाज हो या आज का वैज्ञानिक सभ्य समाज। सभी जगह स्त्री-छवि निर्मित की गई है। मध्यकालीन सामंती व्यवस्था में स्त्रियों का संपत्ति या धन के रूप में भी उपयोग होता था। सामंती दृष्टि नारी का पूर्ण रूप नहीं देखती थी। वह नारी को शरीर ही समझती थी। अरस्तु ने औरत की परिभाषा यह कह कर दी है कि “औरत कुछ गुणवत्ताओं की कमी के कारण ही औरत बनती है। प्राकृतिक रूप से उसमें कुछ कमियाँ होती हैं। अतः मानवता का असली स्वरूप पुरुष है।”

वर्ण व्यवस्था के सूत्रधार मनु ने प्रत्येक वय स्त्री की पराधीनता को समाज के लिए अनिवार्य बताया। पुरुष सत्तात्मकता की इस निरंतर मजबूत होती हुई प्रवृत्ति का ही प्रभाव था कि स्त्री के बारे में सभी भक्त कवियों के विचार एक से नहीं हैं। यद्यपि कबीर की सामाजिक चेतना अत्यंत प्रखर है, लेकिन उनके स्त्री-संबंधी विचारों पर उस युग की गहरी छाया है।

**‘नारी कुंड नरक का, बिरला थामे बाग।  
कोई साधुजन ऊबरे, सब जग मुआ लाग।।’**

तुलसीदास जी कबीर के सामाजिक और धार्मिक मामले से असहमत दिखते हैं परन्तु स्त्री विषयक दृष्टिकोण में दोनों की राय लगभग समान है। तुलसीदास भी स्त्री को अवगुणों की खान और बुराइयों का जड़ समझते हैं। वे यह भी कहते हैं कि पति की सेवा स्त्री का धर्म है। (चाहे पति कैसा भी हो)

**‘सहज अपावन नार, पति सेवत सुभ गति लहे।’**

*हालाँकि तुलसीदास जी स्त्री की पराधीनता की पीड़ा पहचानते हैं—*

**‘कत विधि सुजी नारि जगमाँहि, पराधीन सपने हूँ सुख नाही।’**

*परन्तु साथ ही वे स्त्री की स्वतंत्रता को खतरनाक भी समझते हैं।*

**‘जिमि स्वतंत्र भए बिगरहिं नारी।’**

कबीर, तुलसी तथा जायसी का विचार जहाँ स्त्री विरोधी है वहीं सूरदास के काव्य में स्त्री का सहज, स्वतंत्रता और तेजस्वी रूप मिलता है जो प्रेम में लोक वेद के बंधन को नहीं मानती।

ऐसे समय में जब भक्तिकाल के लगभग सभी संत (कुछ को छोड़कर) स्त्री विरोधी समाज की परिकल्पना का पक्ष पोषक बने हुए थे, उस समय मीरा बाई जैसी स्त्री संत ने नारी चेतना व नारी मुक्ति का बिगुल बजाकर समाज में क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया। मीराबाई के विषय में मैनेजर पाण्डेय का उद्गार इस प्रकार है — “मीरा की कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्वर को मुखर अभिव्यक्ति मिली है। उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही सामाजिक भी।”

स्त्री चेतना और मुक्ति से संबंधित मीरा का यही मूल्यांकन है।

### प्रसंगिकता

वर्तमान समय स्त्री विमर्श का है। स्त्री-विमर्श का प्रमुख मुद्दा “नैतिक के अनेतिक वर्चस्व” की परंपरा का मनोविज्ञान है। नैतिकता की इसी राजनीति के तहत स्त्री की गुलामी को मुकम्मिल बनाया। सदियों तक स्त्री, पुरुष-प्रधान समाज के अत्याचारों की शिकार रहीं हैं। यह तथ्य सभी वर्गों और समुदायों की स्त्रियों पर लागू होती है।

स्त्री को लेकर बनाये गए नैतिकता के मानदंड आश्चर्य जनक रूप से सार्वभौम व सर्वसम्मत रहे हैं। सुप्रसिद्ध महिला मुक्तिवादी लेखिका ‘सीमोन द बोउवार’ का मानना है कि “औरत जन्मना औरत नहीं होती। उसे औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए उसे अनुकूलित किया जाता है और यह काम धर्म,

समाज, रूढ़ियाँ और साहित्य मिलकर करते हैं। साहित्य, जिसे मानवीय विवेक का हरकारा कहा जाता है, उसने भी कभी स्त्री के इन रेशमी बंधनों को तोड़ने का प्रयास नहीं किया बल्कि उन्हें मजबूती ही प्रदान की।”

आज भी भारतीय समाज में स्त्री को गुलाम बनाए रखने में राजसत्ता, पुरुषसत्ता, लोक रूढ़ि और कुलकानि (मर्यादा) की बहुत बड़ी भूमिका है। यह अंशतः सत्य है कि वर्तमान समाज में स्त्रियों की स्वतंत्रता बढ़ी है, किन्तु उस पर आज भी पुरुष प्रधान सत्ता का वर्चस्व कायम है। भक्तिकाल की मीरा लैंगिक दमन और शोषण के विरुद्ध स्त्री के निरंतर संघर्ष को दर्शाती है। मीरा की कविता में संत-भक्तों से अलग, एक पीड़ित-वंचित स्त्री का दुःख और असंतोष इतना मुखर है कि यह उसकी निर्मित छवि को ध्वस्त करने के लिए पर्याप्त है। मीरा सामंती समाज में रहकर उससे मुक्ति की सपना देखती है। मीरा का व्यक्तित्व अपने समय का सबसे क्रांतिकारी स्त्री व्यक्तित्व था। आज की वर्तमान स्त्रियों के लिए मीरा प्रेरणाश्रोत है।

### निष्कर्ष

यह तथ्य विचारणीय है कि दरअसल मीरा के जीवन और काव्य के सभी अंतः और बहिर्साक्ष्य मीरा को आदर्श संत काव्य की जगह एक विद्रोही स्त्री की भूमिका में रखने वाले हैं। ये इस प्रकार है –

(क) मीरा भारतीय समाज में स्त्रियों को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक विचारधारा, सामंती व्यवस्था और धार्मिक विधि-विधानों का उल्लंघन कर अपनी शर्तों पर जीवनयापन करती हैं।

(ख) मीरा अपने समकालीन भक्त-संतों से अलग हैं। उनकी भक्ति, भक्ति के प्रचलित या शास्त्रीय सांचे में नहीं अंटती। दरअसल मीरा ने अपनी लैंगिकता के दमन और शोषण के प्रतिरोध के लिए भक्ति का एक खास रूप गढ़ा है। मीरा का संवाद भी भक्तों से नहीं अपनी समानधर्मी स्त्रियों से है।

(ग) संत भक्तों से अलग मीरा की कविता में उसका वैयक्तिक जीवन बहुत मुखर है। संत-भक्त अपनी सांसारिक पहचान और वैयक्तिक जीवन के संबंध में मौन है, जबकि मीरा की कविता में उसका निजी जीवन संघर्ष, अकेलापन, असुरक्षा, यातना आदि बार-बार आते हैं। सत्ता के प्रति नाराजगी और घृणा मीरा की कविता में बहुत मूर्त और प्रमुख है।

(घ) मीरा की अभिव्यक्ति पद्धति भी प्रायः एक सामान्य वंचित, पीड़ित स्त्री की है। उसमें भक्ति की जगह स्त्री जीवन की शब्दावली और मुहावरे का प्रयोग सर्वाधिक है।

स्पष्ट है कि मीरा का प्रचलित संत-भक्त रूप निर्मित है और उसका ऐतिहासिक विद्रोही स्त्री-चरित्र इस निर्मित रूप के नीचे दब गया है और उसकी उपेक्षा हुई है। लेकिन इसके बावजूद उनके तेज और ताप को न सह सकने के कारण बहुत से लोग भयभीत और आतंकित हुए, परेशान हुए, किन्तु अधिसंख्य भावुक जनों को उनके तेज और ताप ने, सुख और संतोष ही प्रदान किया। हृदय की अतल गहराइयों से फूटे उनके स्वरो ने यातनाग्रस्त उनके दग्ध हृदयों में शीतल लेप का काम किया। मीरा उनके मन-प्राणों में जो बसी सो शताब्दियों बीत जाने के बाद भी वैसे ही उनके हृदयों में विराजमान हैं। मीरा के दिल का दरद आज भी करोड़ों कंठों से फूट रहा है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

- वर्तमान संदर्भ : सं. संगीता आनंद, सुरेश पंडित द्वारा लिखित लेख, 'सत्री-मुक्ति फिर से संकट में', से उद्धृत, पृ. 115
- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य : लेखक शिवकुमार मिश्र, पृ. 157, 196
- मीरा : एक पुनर्मूल्यांकन : सं. पल्लव, मैनेजर पाण्डेय द्वारा लिखित लेख, 'मीरा की कविता और मुक्ति की चेतना', पृ. 117, 118
- मीरा : एक पुनर्मूल्यांकन : सं. पल्लव, आशीष त्रिपाठी द्वारा लिखित लेख 'भक्ति आंदोलन, स्त्री स्वातंत्र्य और मीरा' से उद्धृत, पृ. 226
- मीरा : एक पुनर्मूल्यांकन : सं. पल्लव, माधव हाडा द्वारा लिखित लेख 'मीरा की निर्मित छवि और यथार्थ से उद्धृत, प्र. 180, 192
- मीरा का काव्य : सं. विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 57, 86